नियमसार, १६२वाँ कलश। १११ गाथा के नौ कलश हैं। गाथा एक और कलश नौ। १६२ (कलश)

आत्मा भिन्नो भवति सततं द्रव्यनोकर्मराशे–
रन्तःशुद्धः शम–दम–गुणाम्भोजिनी–राजहन्सः।
मोहाभावा–दपरमखिलं नैव गृह्णाति सोऽयं,
नित्यानन्दाद्यनुपमगुणश्चिच्चमत्कारमूर्तिः ।।१६२।।

[श्लोकार्थः] आहाहा! **आत्मा निरन्तर...** पहले करने का हो तो यह है। आत्मा सर्वज्ञ का निर्णय करो या सर्वज्ञस्वभावी निर्णय करो। सर्वज्ञ प्रगट हो गये, उनका निर्णय करो। ऐसा कहा न? '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयतेहिं**' (प्रवचनसार गाथा ८०), इन अरिहन्त की पर्याय का निर्णय करो या यह सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा का अनुभव, निर्णय करो, वह (सब) एक बात है। सर्वज्ञ के निर्णय बिना सर्वज्ञस्वभाव का निर्णय नहीं होता और सर्वज्ञस्वभाव के निर्णय बिना सर्वज्ञ अरिहन्त का निर्णय नहीं होता और उसका भी क्रमबद्ध बिना निर्णय नहीं होता। आहाहा! क्योंकि क्रमबद्ध वह सर्वज्ञस्वभाव के निर्णय में क्रमबद्ध आता है। सर्वज्ञस्वभाव का जहाँ निर्णय करता है, वहाँ उसे क्रमबद्ध निर्णय में आ जाता है, कि जो जिस समय जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी। करूँ तो होगी, ऐसा वहाँ नहीं रहता।

इसलिए कहते हैं कि **आत्मा निरन्तर द्रव्यकर्म और नोकर्म के समूह से भिन्न है,...** आहाहा! निरन्तर भिन्न है। वस्तु जो है, वह तो निरन्तर सर्व आवरणरहित और नोकर्म तो बाह्य रह गये। उनसे रहित है। आहाहा! करना हो तो पहले यह है। इसमें सच्चे देव, गुरु, शास्त्र का निर्णय आ जाता है, इसमें सर्वज्ञ का निर्णय आ जाता है। इसमें सर्वज्ञस्वभावी आत्मा का निर्णय करने पर यह सब निर्णय आ जाते हैं। आहाहा!

निरन्तर द्रव्यकर्म और नोकर्म के समूह से भिन्न है, अन्तरंग में शुद्ध है... इसका अन्तर शुद्ध है अत्यन्त पवित्र से भरपूर है। इसकी सत्ता, अस्तित्व, पवित्रता के भाव से भरपूर अस्तित्व है। पवित्रता के भाव से भरपूर अस्तित्व है। आहाहा! **शम-दमगुणरूपी कमलों को राजहंस है (अर्थात् जिस प्रकार राजहंस कमलों में केलि करता है,...)** हंस-हंस **(उसी प्रकार आत्मा शान्तभाव और जितेन्द्रियतारूपी गुणों में रमता है)।** रमता है अर्थात् उनमें है। आहाहा! शान्तभाव अर्थात् अकषायभाव अर्थात् चारित्रभाव। चारित्र अर्थात् त्रिकाली चारित्रभाव, हों! उस भाव में **(और जितेन्द्रियतारूपी गुणों में**

रमता है)। उस भाव में ही वह स्थित है। आहाहा! **सदा आनन्दादि अनुपम गुणवाला...** निरन्तर अतीन्द्रिय आनन्द आदि, जिसकी उपमा नहीं मिलती, ऐसा अनुपम गुणवाला। **चैतन्यचमत्कार की मूर्ति ऐसा...** आहाहा! ऐसा आत्मा है, कहते हैं। उसका अनुभव करना, वह सम्यग्दर्शन है। वह सर्वज्ञस्वभावी है। सर्वज्ञ का स्वभाव है, उसका निर्णय करने पर सर्वज्ञ परमात्मा, उनके कहे गये शास्त्र और उनके माने हुए मुनि, वे इस परम आनन्दादि अनुपम गुणवाले का निर्णय होने पर यह सब निर्णय सच्चा हो जाता है।

सदा आनन्दादि... अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय स्वच्छता, अतीन्द्रिय प्रभुता आदि **अनुपम...** जिसे कोई उपमा नहीं दी जा सकती, ऐसा वह गुणवाला है। आहाहा! इसमें व्यवहार और निमित्त तो कहीं उड़ गये। ऐसा है-ऐसा निर्णय करता है, वहाँ व्यवहार और निमित्त के ऊपर से लक्ष्य उड़ जाता है। आहाहा! जिससे लक्ष्य उड़ता है, उससे हो, यह बात नहीं बनती। आहाहा! व्यवहार और निमित्त से अन्दर आत्मा को कुछ भी लाभ हो, ऐसा है ही नहीं - ऐसा कहते हैं।

यह तो सदा आनन्द, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय स्वच्छता, प्रभुता अनन्त गुण के चित्चमत्कारिक स्वभाव से (भरपूर) **गुणवाला और चैतन्यचमत्कार की मूर्ति...** है। आहाहा! रागरहित (तो है) परन्तु एक समय की पर्यायरहित चैतन्यचमत्कार की मूर्ति है। ऐसी ताकत है इसकी कि उस पर नजर पड़ने पर पर्याय में ऐसी जानने की शक्ति प्रगट होती है कि जिसे पर की अपेक्षा नहीं है, ऐसा इसमें स्व-पर जानने का प्रगट होता है। ऐसा चैतन्यचमत्कार इसमें है। समय एक और जानने में लोकालोक आवे, ऐसा यह चमत्कारी चैतन्यमूर्ति प्रभु है। आहाहा!

ऐसा वह आत्मा मोह के अभाव के कारण... इतनी अपेक्षा और समझना। नहीं तो आत्मा में अभाव नाम का गुण है, इसलिए स्वयं अभावगुण के कारण परिणमता है परन्तु यह निमित्त से कथन किया है (कि) मोह के अभाव के कारण। वास्तव में तो इसमें अभाव नाम का एक गुण है। अनादि-अनन्त भाव, अभाव—ऐसा इसमें गुण है। उसके कारण पर से अभावस्वरूप **समस्त पर को (-समस्त परद्रव्यभावों को) ग्रहण नहीं ही करता।** आहाहा! परपदार्थ के भाव ऐसा जो मोह, उसके अभाव के कारण **(-समस्त परद्रव्यभावों को) ग्रहण नहीं ही करता।** इस राग को भी द्रव्य ग्रहण नहीं करता। पुण्य के परिणाम और

तीर्थंकरगोत्र जिस भाव से बँधे, उस भाव को भी द्रव्य ग्रहण नहीं करता। आहाहा! ऐसा यह भगवान आत्मा (विद्यमान है)।

यह १११वीं गाथा का कलश है। मूल में मोहभाव भिन्न है न? उसका विस्तार किया है। पाठ है न मूल? **कम्मादो अप्पाणं भिण्णं भावेइ विमलगुणणिलयं।** आहाहा! ऐसा आत्मा अन्तर्दृष्टि में न आवे और उसकी महिमा इतनी बड़ी है, उसका माहात्म्य इतना है—ऐसा दृष्टि में जब तक न आवे, तब तक परसन्मुख का मोह नहीं उड़ता, परसन्मुख की सावधानी नहीं टलती। स्वसन्मुख की सावधानी की उग्रता में परसन्मुख की सावधानी नहीं रहती। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है।

समस्त पर को ग्रहण नहीं ही करता। पर को ग्रहण करता ही नहीं, वापस ऐसा (कहा है)। एकान्त है। द्रव्यस्वभाव चैतन्यचमत्कार... आहाहा! वह **शम-दमगुणरूपी कमलों को राजहंस है...** वह तो अपने गुण में ही रमता है अर्थात् गुण में ही है, ऐसा। बाहर निकलता ही नहीं। आहाहा! एक समय की पर्याय में ज्ञात होता है परन्तु वह पर्याय में आता नहीं। ऐसा जो राजहंस, जैसे कमल में रमता है परन्तु वह कमल और राजहंस दोनों पृथक् हैं, यह तो दृष्टान्त है। यहाँ तो कहते हैं, अपने गुण में ही वह टिक रहा है, ऐसा कहते हैं। रमता है अर्थात् अपने गुण में ही अनन्त चित्चमत्कार आदि गुणों में ही रहा हुआ है। उसमें से एक समय भी हटा नहीं। आहाहा! ऐसे आत्मा की अन्तर्दृष्टि करना, वह मोक्ष का मार्ग है, क्योंकि मुक्तस्वरूप है। अनन्त गुणसम्पन्न मुक्तस्वरूप है, उसकी अन्दर में दृष्टि करके, मुक्तमार्ग का भाव प्रगट होता है। मुक्तिमार्ग का भाव वहाँ प्रगट होता है। बन्ध के कारण से और बन्ध की अपेक्षा रखकर, निमित्त की अपेक्षा रखकर मुक्तस्वरूप का मोक्ष का मार्ग प्रगट नहीं होता। आहाहा! अब ऐसी बातें।

लोग (ऐसा) जाने कि हम साधारण हैं। साधारण नहीं, प्रभु! तू भगवन्त है, ऐसा यहाँ कहते हैं। अनन्त गुणसम्पन्न प्रभु है। विकार तो नहीं, कर्म तो नहीं, अल्पता नहीं। आहाहा! ऐसे पूर्ण गुण से भरपूर भगवान की दृष्टि करना, वह आलोचना है। आलोचना अधिकार चलता है न? उसे जिसने देखा, उसने आलोचन किया। आहाहा! बाकी अपने पाप और पुण्य के भाव देखना या गुरु के पास कहना कि मुझे इतना हुआ, यह वस्तु नहीं है। गुरु स्वयं ही है। अनन्त गुण का सागर गुरु स्वयं है। उसमें वह रमता अर्थात् रहता स्वयं ही त्रिकाल है। आहाहा!

उसे **मोह के अभाव के कारण समस्त पर को (-समस्त परद्रव्यभावों को) ग्रहण नहीं ही करता।** राग के अंश को द्रव्यस्वभाव ग्रहण नहीं करता। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, उस भाव को भी राजहंस स्पर्श नहीं करता, ग्रहण नहीं करता। आहाहा! ऐसा यह आत्मा, इसका आलोचन अर्थात् इसे देखना, इसे मानना और इसे अनुभव करना, यह मुक्ति का मार्ग है। आहाहा! १६२ (श्लोक पूरा) हुआ।

श्लोक-१६३

(मंदाक्रांता)

अक्षय्यान्तर्गुणमणिगणः शुद्धभावामृताम्भो-
राशौ नित्यं विशदविशदे क्षालितांहः कलङ्कः।
शुद्धात्मा यः प्रहतकरण-ग्राम-कोलाहलात्मा,
ज्ञानज्योतिःप्रतिहततमोवृत्तिरुच्चैश्चकास्ति ।।१६३।।

(वीरछन्द)

अन्तरंग अक्षय गुणमणियों का समूह जो शुद्धातम।
निर्मल शुद्धभाव अमृत से पाप पंक को करे वमन॥
पञ्चेन्द्रिय समूह के कोलाहल का जिसने किया विनाश।
भासमान वह शुद्धातम है ज्ञानज्योति से कर तम नाश॥१६३॥

[श्लोकार्थः] जो अक्षय अन्तरंग गुणमणियों का समूह है, जिसने सदा विशद-विशद (अत्यन्त निर्मल) शुद्धभावरूपी अमृत के समुद्र में पापकलंकों को धो डाला है तथा जिसने इन्द्रियसमूह के कोलाहल को नष्ट कर दिया है, वह शुद्ध आत्मा ज्ञानज्योति द्वारा अन्धकारदशा का नाश करके अत्यन्त प्रकाशमान होता है॥१६३॥

श्लोक -१६३ पर प्रवचन

१६३वाँ कलश।

अक्षय्यान्तर्गुणमणिगणः शुद्धभावामृताम्भो–
राशौ नित्यं विशदविशदे क्षालितांहः कलङ्कः।
शुद्धात्मा यः प्रहतकरण–ग्राम–कोलाहलात्मा,
ज्ञानज्योतिःप्रतिहततमोवृत्तिरुच्चैश्चकास्ति ।।१६३।।

[श्लोकार्थः] आहाहा! **जो अक्षय अन्तरंग गुणमणियों का समूह है,...** क्या कहते हैं? अक्षय—जिसका कभी क्षय न हो, ऐसे **अन्तरंग गुणमणियों का समूह है,...** जिसमें कभी हीनता न आवे। आहाहा! अक्षय—क्षय न हो। आंशिक भी अन्दर हीनता न आवे, ऐसे अन्तरंग गुणमणि का ढ़ेर है। अन्तरंग गुणमणि। अन्तरंग गुणमणि का समूह है। आहाहा! अरे! ऐसा आत्मा, उसे हिलता-चलता कहना...! त्रस हो, वह हिलता-चलता है; स्थावर, वह स्थिर। उसकी व्याख्या।

मुमुक्षु : व्याख्या ही खोटी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्याख्या ही खोटी है। आहाहा! भगवान हिलता नहीं, चलता नहीं और बोलता नहीं। स्थिर रहे नहीं कि चलता था, इसलिए वह स्थिर रहे। स्थिर तो अन्दर गुण में स्थिर है। आहाहा! त्रिकाल अनन्त गुण में स्थिर चैतन्य चमत्कारमूर्ति प्रभु, आहाहा! गुणमणियों का (समूह)। गुणरूपी मणि... आहाहा! एक-दो मणि नहीं, अनन्त गुणरूपी मणियों का। बहुवचन किया है न? गुणमणि नहीं। गुणमणियों का। अनन्त गुण रत्नरूपी मणि। आहाहा! **अक्षय अन्तरंग गुणमणियों का समूह है,...** अन्तरंग गुणरत्नमय का तो पिण्ड है, समूह है। आहाहा! ऐसे आत्मा से पर की दया पालने का और व्रत करने का कहना... आहाहा! यह चक्रवर्ती को राज मिला और झाड़ू से चक्रवर्ती से महल को साफ करना (कहना), ऐसी बात है। आहाहा!

ऐसा जो रत्न का मणि भगवान जिसने सदा **विशद-विशद (अत्यन्त निर्मल) शुद्धभावरूपी...** त्रिकाल शुद्ध निर्मल **शुद्धभावरूपी अमृत के समुद्र में पापकलंकों को**

धो डाला है... अर्थात् उसे अमृत के समुद्र में पापकलंक है नहीं। शब्द वह तो ऐसा प्रयोग किया है। **धो डाला है...** यह शब्द प्रयोग किया है परन्तु होवे तो धोवे न? समझ में आया? वह तो एक शब्द की शैली प्रयोग की है। बाकी कहते हैं कि **अन्तरंग गुणमणियों का समूह है, जिसने सदा विशद-विशद (अत्यन्त निर्मल) शुद्धभावरूपी अमृत के समुद्र में...** पड़ा हुआ ही है। अमृत समुद्र ही है। उसे पाप धोना, वह भी उसमें नहीं है। आहाहा! पुण्य को करना, यह तो नहीं परन्तु पुण्य को धोना, यह भी स्वरूप में नहीं है। आहाहा! यह कहते हैं।

शुद्धभावरूपी अमृत के समुद्र में पापकलंकों को धो डाला है... अर्थात् उसे पुण्य-पाप है ही नहीं, ऐसा। धो डाले का अर्थ यह है। जो भगवान आत्मा अमृत सागर के मणिरत्न से भरपूर, उसमें पुण्य और पाप है ही नहीं। आहाहा! है नहीं, फिर उसे धो डालना, वह तो एक समझाना है। आहाहा! **तथा जिसने इन्द्रियसमूह के कोलाहल को नष्ट कर दिया है,...** आहाहा! अतीन्द्रिय शुद्धभाव के आनन्द के अनुभव में इन्द्रिय के समूह के कोलाहल—पाँच इन्द्रिय का कोलाहल, इन्द्रियों में विकल्प उठे, यह ठीक है, यह ठीक नहीं। यह विषय इन्द्रिय को ठीक पड़ता है और यह विषय ठीक नहीं पड़ता, यह सब कोलाहल है। आहाहा! उसे नष्ट कर दिया है अर्थात् कि वह कोलाहल उसमें है नहीं। आहाहा! होवे तो नाश कर डाले न? आहाहा! वह है नहीं, उसे समझाने की शैली से बात कही है। आहाहा!

समयसार में ३४वीं गाथा में आया है न? आत्मा राग का नाश करता है, यह नाम कथन है। यह कथनमात्र भाषा है। परमार्थ से वह राग का नाश करे, ऐसा है ही नहीं। होवे तो नाश करे न? स्वरूप में नहीं है तो नाश कहाँ से करे? आहाहा! इस राग का नाश करना-ऐसा कहना, यह नाममात्र कथन है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म पड़ता है, भाई! वस्तु है, वह वस्तु ही है। उसमें नाश करना या होना दोनों नहीं है। विकार होना या विकार नाश करना, यह सब पर्याय की बातें हैं, वे अन्दर में है ही नहीं, वस्तु में है ही नहीं। यह पर्याय की बातें निमित्त से है। पर्याय में नष्ट हुआ, ऐसा कहना वह भी निमित्त का कथन है। आहाहा! परमार्थ से वह पर्याय में आया नहीं।

वह तो आनन्द का धाम, सत्ता का आलय। पूर्ण गुण की सत्ता का धाम, स्वयं ज्योति

सुखधाम। श्रीमद् में आता है न? स्वयं ज्योति। आनन्द का धाम। जिसके क्षेत्र में से अतीन्द्रिय आनन्द पके, ऐसा वह क्षेत्र है। इन्द्रिय का विषय-जहर पके, ऐसा वह क्षेत्र है ही नहीं। आहाहा! इन्द्रिय के विषय को नाश कर दिया है, कोलाहल को नाश कर दिया है। अर्थात् कोलाहल उसमें है नहीं। नाश कर दिया है, यह पर्याय की व्याख्या है। वस्तु में नाश कर दिया, या है, यह वस्तु कोई है नहीं। आहाहा! ऐसे आत्मा की बात है। ऐसा आत्मा नजर में, दृष्टि में जहाँ तक न आवे, ऐसा आत्मा ज्ञान में ज्ञेयरूप से न आवे, तब तक सब निरर्थक / व्यर्थ है। आहाहा! अब इसमें व्यवहार से और निमित्त से होता है, (ऐसा है नहीं)। व्यवहार ही उसमें है नहीं, निमित्त भी उसमें नहीं। है नहीं, फिर उसे नाश करना या उससे होना, यह प्रश्न कहाँ है? आहाहा!

इन्द्रियसमूह... समूह अर्थात् पाँच इन्द्रियाँ। पाँच इन्द्रिय के समूह को... कोलाहल। वह तो कोलाहल है। पाँच इन्द्रियों में शान्तस्वरूप प्रभु, निर्विकारी शान्त आनन्दस्वरूप। वह पाँच इन्द्रिय के विकल्प तो कोलाहल है। वह कोलाहल तो जिसने नष्ट कर दिया है अर्थात् जिसमें कोलाहल है ही नहीं। आहाहा! जिसका आश्रय लिया, वहाँ इन्द्रिय का कोलाहल है ही नहीं। भगवान का आश्रय लिया, वहाँ इन्द्रिय के समूह का कोलाहल है ही नहीं। आहाहा!

भगवान अर्थात् आत्मा। **वह शुद्ध आत्मा...** देखो न! **वह शुद्ध आत्मा ज्ञानज्योति द्वारा अन्धकारदशा का नाश करके...** यह पर्याय से बात की है। वह शुद्ध आत्मा ज्ञानज्योति द्वारा, पर्याय द्वारा **अन्धकारदशा का नाश करके...** ज्ञान की उत्पत्ति करके, अज्ञान का व्यय करके **अत्यन्त प्रकाशमान होता है।** आहाहा! वास्तव में शुद्ध आत्मा जानने में आया, इससे उसे ऐसा कहा है। शुद्धात्मा तो शुद्ध ही है परन्तु जानने में आया, इसलिए ज्ञानज्योति द्वारा अन्धकार का नाश किया। प्रकाश किया और अन्धकार का व्यय किया। ध्रुव का आश्रय किया। आहाहा! ध्रुव चैतन्य का आश्रय किया तो ज्ञानज्योति प्रगट हुई, यह उत्पाद हुआ। अन्धकार का व्यय हुआ, ध्रुवरूप से आश्रय रहा। आहाहा!

अनन्त प्रकाशमान है। अनन्त **अत्यन्त प्रकाशमान होता है। नाश करके अत्यन्त प्रकाशमान होता है।** पर्याय में अब प्रकाशमान है, कहते हैं। वस्तु तो प्रकाशस्वरूप ही है परन्तु उसका जहाँ आश्रय किया, वहाँ पर्याय प्रकाशमय प्रगट हुई और अन्धकार का व्यय / नाश किया। आहाहा! जो इसमें नहीं, उसका नाश किया, वह भी पर्याय अपेक्षा से

कथन है। द्रव्य विकार को नाश करता है, यह भी अपेक्षित कथन है। आहाहा! ऐसा वस्तु का स्वरूप है।

मुमुक्षु : पर्याय का प्रकाश और इन्द्रिय...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रकाश पर्याय में है। वह अपेक्षित पर्याय हुई। उत्पाद और व्यय की अपेक्षा हो गयी। ध्रुव को उसकी अपेक्षा है ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : गुणशक्ति अन्दर भरपूर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भरपूर ही है, भरा हुआ ही है। आहाहा! यह तो जिसे अन्दर आश्रय / स्वीकार जहाँ होता है, वहाँ पर्याय में उछलता है। है, वह पर्याय में उछलता है। पर्यायदृष्टि से, हों! द्रव्यदृष्टि से तो द्रव्य है, वह है परन्तु उसकी दृष्टि की है, वह पर्याय है। पर्याय-दृष्टि से प्रकाश प्रगट होता है, अन्धकार का नाश होता है। आहाहा! ऐसा भगवान अनादि से अज्ञान में रहा है, यही विस्मय और आश्चर्यकारी है। यही विस्मय और आश्चर्य है। ऐसी चीज़... आहाहा! समझ में आया? ऐसी महाप्रभु की चीज़ अनन्त गुणमणि रत्न की खान, वह अन्धकार में अज्ञान में रहा, राग में रहा, यही कोई विस्मय / आश्चर्य है। आहाहा!

इसीलिए कहते हैं **शुद्ध आत्मा ज्ञानज्योति द्वारा...** पर्याय द्वारा **अन्धकारदशा का नाश करके...** पर्याय से **अत्यन्त प्रकाशमान होता है।** अत्यन्त प्रकाशमान है, जिसे प्रकाश में किसी की अपेक्षा नहीं। प्रवचनसार की १०१वीं गाथा में यहाँ तक कहा। प्रवचनसार। उत्पाद को व्यय की अपेक्षा नहीं। आहाहा! अनन्त आनन्द के उत्पाद को विकार के व्यय की अपेक्षा नहीं। विकार के व्यय को अनन्त आनन्द के उत्पाद की अपेक्षा नहीं। अनन्त आनन्द का उत्पाद, उसे ध्रुव की अपेक्षा नहीं। आहाहा! प्रवचनसार की १०१वीं गाथा। १०२ गाथा में जन्मक्षण कहा। जिस समय में जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, उस समय होनेवाली है। उसकी उत्पत्ति का एक क्षण-काल है। आड़ी-टेढ़ी फेरफार (नहीं होता)। नम्बरवार जहाँ पर्याय होती है, वहाँ उल्टा-सीधा फेरफार है ही नहीं। आहाहा! यह पर्यायनय का कथन है। ध्रुव में तो वह है ही नहीं। उत्पन्न होना और व्यय होना, यह ध्रुव में तो है ही नहीं। जिसमें नहीं है, उसकी दृष्टि होने पर अनन्त आनन्द का प्रकाश प्रगट होता

है और वहाँ अन्धकार का नाश होता है। यह पर्याय की (अपेक्षा से कथन है)। आहाहा! ऐसी बात! साधारण समुदाय में ऐसी बात रखे तो लोगों को ऐसा लगता है कि यह तो बहुत ऊँची बात है। ऊँची नहीं; जो है, वह यही है। धर्म के नाम से जो है, वह यह है। फिर ऊँची कहकर उसे हल्की ठहराकर नीचे की कोई दूसरी चीज़ से होता है और यह तो सब ऊँचा है, ऐसा कहकर इसकी हीनता कर डालना, ऐसा नहीं है। आहाहा!

पहले नम्बर में वस्तु परिपूर्ण अनुपम दृष्टि में जहाँ ज्ञान में ज्ञेयरूप से प्रतिभास हुआ, ज्ञेय में वस्तु नहीं आयी - पर्याय में वस्तु नहीं आयी परन्तु पर्याय में उस वस्तु का जितना सामर्थ्य और स्वरूप है, उतना पर्याय में ज्ञान आया और उतनी श्रद्धा भी आयी, तथापि उस श्रद्धा में वह वस्तु नहीं आयी क्योंकि श्रद्धा और ज्ञान, वह पर्याय है। पर्याय में द्रव्य नहीं आता, परन्तु पर्याय में द्रव्य का जैसा यथार्थ स्वरूप है, वैसा उसे ज्ञान और श्रद्धा में आ जाता है। आहाहा! इसीलिए अत्यन्त प्रकाशमान है, ऐसा कहा है। अन्धकार का नाश करके अत्यन्त प्रकाशमान है। आहाहा!

ध्रुव का आश्रय करने से पर्याय में चैतन्य प्रकाशित होता है और पर्याय में अन्धकार का व्यय होता है, ऐसा बतलाना है। आहाहा! करना तो यह है। इसकी खबर नहीं होती और जिन्दगी चली जाती है। देह छूट जाएगी और आत्मा तो नित्य है, अनादि अनन्त है, कहीं जानेवाला है। देह छूटने पर कहाँ जाएगा? यहाँ जिसके भाव का ठिकाना नहीं किया, जो चीज़ है, उसका आदर नहीं, उस चीज़ की कीमत नहीं की; कीमती चीज़ की कीमत नहीं की, नहीं कीमती उसकी कीमत की है, वह तो कहीं भटकने में जाएगा। आहाहा! देह को छूटने का काल तो अल्प काल है। पचास वर्ष हुए, उसे पचास वर्ष (अब) होनेवाले नहीं हैं कहीं। आहाहा! फिर रहने का तो अनन्त काल रहता है परन्तु जिसने इस अपनी नित्य चीज़ की महिमा, कीमत और माहात्म्य नहीं जाना, उसे पर-सन्मुख की महिमा और माहात्म्य नहीं छूटता और पर-सन्मुख की महिमा माहात्म्य नहीं छूटता, इसलिए उसे परसंयोग नहीं छूटता। परसंयोग में ही उसका अवतार धारण करता है। आहाहा! १६३ श्लोक (पूरा) हुआ।

श्लोक-१६४

(वसंततिलका)

सन्सार-घोर-सहजादिभि-रेव रौद्रै-
दुर्:खादिभिः प्रतिदिनं परितप्यमाने ।
लोके शमामृतमयीमिह तां हिमानीं,
यायादयं मुनिपतिः समताप्रसादात् ।।१६४।।

(वीरछन्द)

यह जग सहज घोर रौद्रादिक दुख से नित परितप्त रहे।
मुनिवर समता के प्रसाद से शम-अमृत हिम राशि ग्रहें ॥१६४॥

[श्लोकार्थः] संसार के घोर, [१]सहज इत्यादि रौद्र दुःखादिक से प्रतिदिन परितप्त होनेवाले इस लोक में यह मुनिवर समता के प्रसाद से शमामृतमय जो हिम-राशि (बर्फ का ढेर) उसे प्राप्त करते हैं ॥१६४॥

श्लोक -१६४ पर प्रवचन

---

१६४ श्लोक।

सन्सार-घोर-सहजादिभि-रेव रौद्रै-
दुर्:खादिभिः प्रतिदिनं परितप्यमाने ।
लोके शमामृतमयीमिह तां हिमानीं,
यायादयं मुनिपतिः समताप्रसादात् ।।१६४।।

[श्लोकार्थः] आहाहा! **संसार के घोर, सहज इत्यादि रौद्र दुःखादिक से प्रतिदिन...** क्या कहते हैं? **संसार...** पर्याय में जो संसरणदशा, विकारीदशा, मिथ्यात्वदशा, वह सहज

१. सहज=साथ में उत्पन्न अर्थात् स्वाभाविक। निरन्तर वर्तता हुआ आकुलतारूपी दुःख तो संसार में स्वाभाविक ही है, अर्थात् संसार स्वभाव से ही दुःखमय है। तदुपरान्त तीव्र असाता आदि का आश्रय करनेवाले घोर दुःखों से भी संसार भरा है।

से जन्मी हुई स्वाभाविक है। जैसे वस्तु स्वाभाविक है, वैसे घोर संसार की उत्पत्ति भी स्वाभाविक अनादि से है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! इसीलिए सहज शब्द प्रयोग किया है। जैसे सहज भगवान पर की अपेक्षा बिना सहजस्वरूप ही है, वैसे इसकी पर्याय में भी सहज स्वाभाविक निरन्तर वर्तता हुआ आकुलतारूपी दुःख, वह तो संसार में स्वाभाविक ही है। आहाहा! जहाँ हो वहाँ विकल्प का कोलाहल। संकल्प और विकल्प के कोलाहल का जाल संसार में चिपट रहा है। आहाहा!

सहज इत्यादि रौद्र... आहाहा! पर्याय में अनादि से स्वाभाविक दुःख है, कहते हैं। स्वाभाविक कहा न, सहज? आहाहा! वह भी स्वाभाविक-सहज दुःख है। आहाहा! **इत्यादि रौद्र दुःखादिक से प्रतिदिन... निरन्तर वर्तता हुआ आकुलतारूपी दुःख तो संसार में स्वाभाविक ही है,...** क्या कहते हैं? परमानन्द का नाथ भगवान जैसे सहज स्वरूप से विराजता है, वैसे अनादि से उसकी पर्याय में संकल्प-विकल्प की दुःख की दशा सहज स्वाभाविक अनादि से है। आहाहा! कर्म से है-ऐसा नहीं। इसलिए सहज रौद्र (कहा है)। आहाहा! पैसा मिला, पैसे खर्च किये, स्त्री मिली, पुत्र हुआ, घर बनाया, मकान हुआ, वास्तु करके, कार्यकर्ताओं को भोजन कराया, यह अकेली सहज दुःखदशा है।

सहज **निरन्तर वर्तता हुआ आकुलतारूपी दुःख तो संसार में स्वाभाविक ही है,...** आहाहा! वह संयोग के कारण (दुःखदशा) नहीं है। उसमें विकल्प का जाल ही अकेला खड़ा किया है। यह किया, यह छोड़ा, यह लिया, इसका किया, इसका किया, यह किया। आहाहा! ऐसी **सहज रौद्र दुःखादिक से...** रौद्र। आहाहा! **तदुपरान्त तीव्र असाता आदि का आश्रय करनेवाले घोर दुःखों से भी संसार भरा है।** स्वाभाविक संकल्प-विकल्प तो है परन्तु असाता के उदय से भी उसे प्रतिकूलता का पार नहीं है। आहाहा! दो बातें की है। कहा न, **स्वभाव से ही दुःखमय है। तदुपरान्त तीव्र असाता आदि का...** नीचे अर्थ है न? **तीव्र असाता आदि का आश्रय करनेवाले घोर दुःखों से...** आहाहा! असाता के उदय के कारण मन में, वाणी में, देह में प्रतिकूलता के कारण से दुःख, दुःख और दुःख ही है। प्राणी दुःखी है। यह करोड़पति, अरबपति राजा, देव जो पर का पति होता है, करोड़पति, लखपति, नरपति, वह दुःखपति है। आहाहा! कहने में मुनि को वाणी कम पड़ती है, कहते हैं। क्या कहना? आहाहा!

घोर, सहज इत्यादि रौद्र दुःखादिक से... विकल्प के दुःख से तो घिरा हुआ ही है।

भगवान निर्विकल्प आनन्द का नाथ, आनन्द का सागर, अनन्त गुणमणि से भरपूर, उस सहज पर्यायरूपी दु:ख से तो पर्याय में भरा हुआ ही है। आहाहा! घोर संसार का स्वाभाविक **रौद्र दु:खादिक से प्रतिदिन...** आहाहा! स्वभाव के आश्रय बिना, इसका पर में आश्रय निरन्तर वर्तता ही रहता है। आहाहा! फिर भले साधु हो। बाहर का संसार, स्त्री-पुत्र को छोड़े। वह संसार नहीं है। संसार तो अन्दर मिथ्या अभिप्राय और मिथ्या अस्थिरता, वह संसार है। वह संसार छोड़ा नहीं और बाहर में परिवार तथा स्त्री-पुत्र छोड़कर अन्दर संकल्प-विकल्प में पड़ा है। आहाहा! स्वाभाविक एक तो दु:ख है और असाता के उदय से भी प्रतिकूलता का, संयोग का दु:ख है। आहाहा!

घोर दु:खों से भी संसार भरा है। परन्तु लगे किसे? आनन्द का नमूना देखा हो तो इसे संकल्प-विकल्प संसार के दु:ख का ख्याल आवे। इसके बिना इस संसार के दु:ख का (ख्याल कहाँ से आवे)? कहाँ दु:ख है इसमें? क्या है? परन्तु दु:ख की व्याख्या तू समझता नहीं। आत्मा के आनन्द से विपरीत संकल्प-विकल्प, वह दु:ख का घोर संसार है। आहाहा! बाहर के शरीर की शारीरिक साता, पैसे की अनुकूलता... आहाहा! वहाँ कहा न, एक अरबपति है। नैरोबी में। एक व्यक्ति तो ऐसा कहता था कि एक अरब की तो इसे आमदनी है। एक व्यक्ति उसे ऐसा कहता था। कहा था न? कोई कहता था। एक अरब की आमदनी। व्याख्यान में आया था। यह बात (वहाँ कहाँ है)? बाहर पैसे के ढ़ेर, सुख के ढ़ेर अज्ञानी को दिखायी दें। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि उसमें विकल्प और संकल्प से घिर गया हुआ, आनन्द के सागर को विकल्प से घेर डाला है। जो इसमें नहीं, उसकी पर्याय में विकल्प के घोर संसार के दु:ख से घिरा हुआ है। आहाहा! जिसकी आड़ में प्रभु आनन्द है, उसकी तो इसे खबर भी नहीं। आहाहा! पैसेवाले दु:खी, देव दु:खी, राजा दु:खी। अपने स्वरूप को भूलकर संकल्प-विकल्प करनेवाले रौद्र घोर संसार में दु:खी हैं। आहाहा! उन्हें लोग सुखी कहते हैं। मूर्ख-पागल लोग सुखी कहते हैं। पाँच-पच्चीस लाख, करोड़-दो करोड़, पाँच करोड़, दस करोड़ मिले। आहाहा!

नैरोबी में एक व्यक्ति कहता था कि सात लाख की आबादी है। एक लाख मोटर है और साढ़े चार सौ करोड़पति हैं। आहाहा! धूल में है, कहा। करोड़पति किसका? पति जड़ का। भैंस का पति पाड़ा होता है; वैसे करोड़ जड़रूप का पति जड़ माने। जड़ है।

आहाहा! अरे! इसे सुनने को मिलता नहीं। इसे विचारने का समय निकालता नहीं और समय चला जाता है। देह की स्थिति पूर्ण होने के समीप है। जो-जो दिन जाते हैं, वे मौत के समीप जाते हैं। यह जानता है कि मैं बड़ा होता हूँ। भगवान कहते हैं कि देह की स्थिति पूरी होने के नजदीक जाता है। जहाँ पूरी होगी, वहाँ एकदम देह छूट जाएगी। आहाहा! प्रभु तो अनादि-अनन्त है। कहीं तो रहेगा। कहाँ रहेगा? आहाहा! संकल्प और विकल्प के जाल में (रहेगा)। जैसे मकड़ी लार में फँस गयी, वैसे यह संकल्प-विकल्प में फँसा हुआ चार गति में भटकने में रहेगा। आहाहा! भाषा कैसी ली है?

संसार के घोर, सहज... स्वाभाविक परन्तु घोर। आहाहा! ऐसे **रौद्र दुःखादिक से प्रतिदिन परितप्त होनेवाले...** आहाहा! **प्रतिदिन परितप्त...** दुःख से परितप्त। आहाहा! अग्नि में जैसे चूहा जले-सुलगे, वैसे यह संकल्प-विकल्प में सुलग रहा है, कहते हैं। परितप्त है। आहाहा! दुनिया से अलग जाति है। आहाहा! **प्रतिदिन...** किसी समय दुःख से खाली नहीं है, कहते हैं। **परितप्त होनेवाले इस लोक में...** आहाहा! ऐसी यह दुनिया-लोक, इसमें **यह मुनिवर...** आहाहा! **समता के प्रसाद से...** विकल्प का जाल तोड़ डालकर **समता के प्रसाद से...** आहाहा! मुनिवर अर्थात् कुछ स्त्री, पुत्र, दुकान छोड़कर बैठे, इसलिए मुनिवर हैं, ऐसा नहीं है। उनके संकल्प-विकल्प का जाल जो घोर संसार है। जीव का संसार आत्मा की पर्याय से दूर नहीं होता। स्त्री, पुत्र, धन्धा, परिवार, वह संसार नहीं है क्योंकि आत्मा की पर्याय में वह चीज़ नहीं है। आत्मा में द्रव्य-गुण में तो नहीं परन्तु उसकी पर्याय में कर्म, शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार उसकी पर्याय में नहीं। आहाहा! वे तो दूर वर्तते हैं। पर्याय से तो दूर वर्तते हैं। उसकी पर्याय में तो घोर संकल्प-विकल्प के रौद्र दुःखदायक परिणाम वर्तते हैं। आहाहा!

जिसके द्रव्य-गुण तो त्रिकाल शुद्ध है परन्तु उसकी पर्याय जो अवस्था, वर्तमान वर्तती हालत है, उस हालत में कर्म नहीं, शरीर नहीं, स्त्री नहीं, परिवार नहीं, कुटुम्ब नहीं पैसा नहीं, इज्जत नहीं। इसकी पर्याय में ये चीज़ें नहीं। ये तो दूर हैं। आहाहा! इसकी पर्याय में तो दुःख का भाव, संकल्प-विकल्प का भाव इसमें है, वह इसकी पर्याय में है। आहाहा! उस पर्यायबुद्धि को छोड़कर मुनिवर... आहाहा! **समता के प्रसाद से...** देखा? वह विभ्रम दुःख था। संसार के घोर संकल्प-विकल्प। यह वीतरागता आयी। वीतरागी स्वभावी भगवान के अवलम्बन से वीतरागता आयी। यह वीतरागता कहो, शुद्ध उपयोग कहो,

समता कहो... आहाहा! मुनिवर शुद्धोपयोग के प्रसाद से... आहाहा! समता अर्थात् यह। जहाँ पुण्य और पाप दोनों समान बन्ध के कारण दुःखदायक है। ऐसी जो अन्दर समता वर्तती है। आहाहा! और त्रिकाली भगवान आत्मा का अवलम्बन वर्तता है।

उसके प्रसाद से मुनिवर **शमामृतमय जो हिम-राशि...** आहाहा! समता का, अमृत का रस भगवान **हिम-राशि (बर्फ का ढेर)...** वे मुनिवर शान्ति को पाते हैं। उस संसार के दुःख में, रौद्र परिणाम में दुःख पाता है और असाता के कारण (दुःख पाता) है। दो बातें ली हैं और इन्हें तो-मुनिवर को तो समता, आनन्द, वीतरागता... आहाहा! **शमामृतमय...** शमतारूपी अमृत वीतरागभावरूपी अमृत। जो **(बर्फ का ढेर)...** आहाहा! शमतारूपी अमृत का, हिम का ढ़ेर। आहाहा! पर्याय में, हों! उसे प्राप्त करते हैं। वह (अज्ञानी) रौद्र दुःख को प्राप्त करता है तो ये (मुनिवर) शमतारूपी शान्ति को पाते हैं।

शमामृतमय जो हिम-राशि (बर्फ का ढेर) उसे प्राप्त करते हैं। आहाहा! शान्त... शान्त... शान्त... विकल्प-संकल्प का अभाव। शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति से भरपूर भगवान के आश्रय से प्रगट हुई शान्ति के समताभाव को प्राप्त करते हैं। आहाहा! उन्हें मुनिवर कहते हैं। आहाहा! स्त्री, पुत्र, दुकान छोड़े, इसलिए मुनि है; धन्धा नहीं करता, इसलिए, मुनि है; पंच महाव्रत पालता है, इसलिए मुनि है - ऐसा नहीं है।

मुनिवर तो समता के प्रसाद से, वीतरागभाव के प्रसाद से संकल्प-विकल्प के अभाव से... आहाहा! पर्याय में, हों! जैसा वीतरागस्वभाव है, वैसा ही उसका आश्रय करके जिसने वीतरागता, समता प्रगट की है। ऐसे शमामृतमय शान्ति का ढ़ेर, हिम का ढ़ेर... आहाहा! शान्ति का सागर पर्याय में उछला। ऐसे यहाँ शान्ति का ढ़ेर आया। अज्ञानी को दुःख का घोर संसार आया। इन्हें शान्ति का आनन्द आया। आहाहा! दोनों की अपेक्षा से पारस्परिक बात की है न? पहले उस **संसार के घोर, सहज इत्यादि रौद्र दुःखादिक से प्रतिदिन परितप्त होनेवाले इस लोक में...** तब **मुनिवर समता के प्रसाद से...** आहाहा! मुनि किसे कहें? कहते हैं। आहाहा! जिन्हें आनन्द का ढ़ेर भगवान पूर्ण शान्तरस से-अकषायभाव से भरपूर, उसके आश्रय से जो अकषायभाव शान्ति प्रगट हुई, उस शमामृत के सुख के ढ़ेर में उसे पाते हैं। अतीन्द्रिय शान्ति को पाते हैं। उन्हें मुनिवर कहते हैं, उसको (अज्ञानी को) संसार कहते हैं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)